महिला सशक्तिकरण : ऐतिहासिक दृष्टिकोण

परमिन्दर सिंह
शोधछात्र समाजशास्त्र विभाग
भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)
डॉ0 संदीप कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक – सामाजिक विज्ञान व मानविकी संकाय
भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

सारांश :– ऐतिहासिक या बौद्धिक अमान्यता यथार्थ के सत्य को नकारता ही नहीं बल्कि यह बौद्धिक स्तर पर एक चुनौती प्रस्तुत करता है। जिसमें समाज व इतिहास विचारने की आवश्यकता महसूस करें। नारी की प्रस्थिति व उनके विभिन्न कार्यो में आये परिवर्तनों को सामाजिक संस्थाओं, परंपराओं, प्रथाओं के माध्यम से विवेचित किया जा सकता है।

महत्वपूर्ण शब्द :– अर्द्धांगिनी, उपनयन संस्कार, उपनिषद, अभिजात्य।

भारतीय समाज में स्त्रियों को ज्ञान व शक्ति का प्रतीक माना गया है। इस प्रतीको के रूप में भारतीय समाज नारी को सरस्वती, दुर्गा एवं लक्ष्मी के रूप में पूजता रहा है। समाज में स्त्री को पुरूष का आधा अंग माना जाता है एवं उसे अर्द्धांगिनी के रूप में सम्मानजनक स्थान दिया जाता है। स्त्री को परिवार की धुरी एवं किसी भी शुभ कार्यों अथवा धार्मिक कार्यों को अर्द्धांगिनी के बिना पुरा नहीं किया जा सकता है। रामायण में अश्वमेघ यज्ञ पूरा करने के लिए राम ने सीता की मुर्ति बनवायी थी। स्त्री के वास्तविक महत्व की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि नारी परिवार की नीव, परिवार समुदाय का आधार है एवं समुदाय राष्ट्र का।

अतः स्पष्ट स्त्री ही राष्ट्र की नीव है। जिस राष्ट्र अथवा देश में स्त्रियों का समुचित मान व सम्मान होता है वही राष्ट्र एक आर्दश एवं उन्नतिशील राष्ट्र बन सकता है।

प्रांरभ में भारतीय समाज में स्त्रियों को अनेकों अधिकार एंव मान–सम्मान प्राप्त थे। वैदिक काल एवं उतरवैदिक काल के पश्चात समाज की मौलिक व्यवस्थाओं का स्थान रूढ़ियों ने ले लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों का सम्मान एवं उनके अधिकार कम होते चले गये। पुरूष प्रधान समाज स्त्रियों के अधिकार का हन्न करता गया एंव कभी सांस्कृतिक मूल्यों एवं कभी परंपराओं के नाम पर स्त्री का शोषण होता गया। इन सब के परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्थिति दिन प्रतिदिन बद से बदतर होती गई। रूढ़ियों एंव परंपराओं को धर्म के

ज्ञाताओं समृतिकारों का सहयोग मिलने से स्त्रियां धीरे–धीरे परतंत्र निसहाय एवं निर्बल बन गई। एंव समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति पुरूष की तुलना में द्वितीयक हो गई। पुरूष ने स्त्री के पारिवारिक अधिकार सीमित कर दिये एवं समय का प्रभुत्व स्थापित कर लिया। 3

वैदिक काल में कन्या को अन्य दुखों का कारण नहीं माना जाता था। वैदिक साहित्य मूलतः आध्यात्मिक साहित्य है। यधपि वैदिक समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति का प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। अतः कभी–कभी विरोधी तथ्य भी सामने आते हैं। परिवार में कन्या की प्रस्थिति में भी इसके उदाहरण मिलते है। अर्थववेद में एक स्थान पर कहा गया है। हमारे यहां पुत्र का जन्म हो एवं कन्या का जन्म किसी दूसरे के यहां हो'। एक दुसरे स्थान पर कहा गया है 'नवजात पुत्र को पिता उल्लास से भरकर हाथों में उठा लेता है परन्तु कन्या को माता के पास लेटी रहने दिया जाता है'।

इसके विपरीत वृहदारणर्य उपनिषद् लिखा है – 'अथ या इच्छेद दहिता पंडिता जायेत'। इससे पता चलता है कि सुंदर एवं विदुषी कन्या की कामना भी लोग करते थे। बारह गृहसूत्र के अनुसार सुंदर कन्याओं की कामना के लिए वधुएँ गोमुख आदि वाद्यों का वादन करती थीं। यद्यपि पुत्र का जन्म परिवार के उल्लास का कारण था क्योंकि पुत्र द्वारा ही पित्रों के श्राद्ध एवं तर्पण आदि कर्म कांड सम्पन्न होते थे तथापि कन्या एवं पुत्र के पालन–पोषण में भेदभाव नहीं किया जाता था।

शिक्षा का आरंभ उपनयन संस्कार से होता था। उपनयन संस्कार पुत्र एवं पुत्री दोनों का होता था, दोनो ही विद्याध्ययन हेतु गुरू के आश्रम में जाते थें। बालिकाऐं भी बालको की भांति ब्रहाचर्यवत का पालन करते हुए यज्ञोपवीत, मौजी, मेखला एंव वल्कल वस्त्र धारण करती थी। लड़को की तरह लड़कियों को भी 'परा' एंव 'अपरा' दोनों प्रकार की विद्या प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। वेदों के अनुसार ब्रहाचर्य वर्त धारण कर विद्या समाप्त करने पर युवतियां योग्य पतियों को प्राप्त करती हैं। ब्रहाचर्य कन्या 'सुतान विन्दते पतिम्' गोमिल गोहासुत्र में स्त्री शिक्षा

के महत्व पर जोर देते हुए कहा गया है कि अशिक्षित पत्नि यज्ञ करने में असमर्थ होती है। वैदिक काल में स्त्रियां वेदों का अध्ययन भी करती थीं। ऋग्वेद में मंत्रो/ऋचाओं पंडिता की युवती 'वृषी 'कहलाती थीं। यजुर्वेद की कंठशाला का अध्ययन पूर्ण करने वाली स्त्री 'कंठी ' एंव आधार शिला व्याकरण में पारगंत युवती को 'आप्शिला' कहा जाता था।

क्षत्रिय कन्याऐं युद्ध कोशल में भी निपुण होती थी। ऋग्वेद वाध्रिमती राशिमसी एंव व्रिहपला स्त्री योद्धाओं की चर्चा है। इस प्रकार वैदिक युग में युवतियां अपनी योग्ताएं इच्छा के अनुसार विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में स्वतंत्र थी। शिक्षा पुर्ण हो जाने के बाद पुरूषों की भांति स्त्रियां भी अध्ययन कार्य करने के लिए स्वतंत्र थीं। शिक्षा पुर्ण हो जाने के बाद पुरूषों की भांति स्त्रियां भी अध्यन कार्य करने के लिए स्वतंत्र थी। इन्हें अध्यापिका, उपाध्यायी एवं आचार्य के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

पत्नी के रूप में नारी की प्रतिष्ठा पुरूष के समान ही होती थी पति के परिवार में स्त्री का स्वागत 'गृहलक्ष्मी' एंव 'गृहस्वामिनी' रूप में होता था एंव साम्राज्ञी श्वसूरे भव साम्राज्ञी अधिदेवयु। इस समय ऐसी धारणा थी कि स्त्री पुरूष का पति पत्नी के रूप में सम्बध अन्योन्याश्रयी है। ऐसा कहा जाता है कि सृष्टि का प्रारंभ करने के लिए प्रजापती ने अपने शरीर को दो भागो को नर एंव नारी में विभक्त किया था। इसलिए पत्नी को अर्द्धागिनी कहा जाता है। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में पत्नी पति के साथ भाग लेती थी। अतः उसे 'सहधर्मिणी' कहा गया है। शथपत ब्राहमण के अनुसार कोई भी यज्ञ पत्नी की उपस्थिती के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था।

वैदिक काल में स्त्री–पुरूष के कार्यो का विभाजन कर दिया गया था। पत्नी गृहस्थी के चक्र की धुरी थी। जिसके बिना गृह कार्य का संचालन असंभव था। पति की जीवन यात्रा में सहचरी समस्या के समाधान में वह पति को परामर्श देने वाली सलाहकार थी। सुख–दुख के साथी के रूप में वह उत्तम सखा थी एंव जीवन को उल्लास से भर देने वाली प्रकाश की किरण थी।

उत्तर वैदिक काल में कन्या के विवाह का उत्तर दायित्व माता पिता के उपर था। यद्यपि स्वयंवर के उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। विवाह प्रायः अपनी ही जाति में होता था परंतु अनुलोम एंव प्रतिलोम विवाह के उदाहरण मिलते हैं। पुरूष यदि अपने से निम्न वर्ण कन्या से विवाह करता था तो वह अनुलोम विवाह कहलाता था एवं इससे कन्या के कुल का गौरव बढ़ता था। परंतु यदि उच्च वर्ण की कन्या एवं उससे कन्या के कुल का अपमान होता था। फिर भी इस प्रकार के विवाहों की व्यवस्था थी। असुरों के गुरू सुक्राचार्य की कन्या देवयानी ने अपने पिता के शिष्य ययाति जो क्षत्रिय थे, से विवाह किया था।

मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है। अर्थात ब्रहम, देव , आर्य, प्रजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच इनमें से राक्षस एंव पैशाच विवाह संभवतय उस समय की किन्हीं जनजातियों में प्रचलित रहें होगें। आर्य विवाह पद्धति में इसको सम्मिलित करने का उदेश्य ऐसे विवाहों से उत्पन्न संतान को समाज में उचित स्थान दिलाना ही रहा होगां। बोधायन सुत्र में तो अपहरण द्वारा किये गये विवाह का मान्यता ही नहीं दी गई। ऐसी कन्या को कुआंरी माना गया है एवं उसके अन्यत्र विवाह की सहमति दी गई है।

एक पुरूष के एक स्त्री के साथ विवाह आदर्श माना जाता था। परंतु धीरे–धीरे बहु विवाह प्रथा प्रचलित हो गई। जिसके कारण सौतिया दाह की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। राम का वन गमन इसका उदाहरण है। उत्तर वैदिक में विवाह की अनिवार्यता बढ़ती चली गई। ईसा से 300 वर्ष पूर्व कन्या के लिए विवाह अनिवार्य हो गया था।

वैदिक साहित्य का ब्राह्मणों एंव उपनिषदों के समावेस के कारण विस्तार एव आकार बहुत बढ़ गया था। साथ ही वेदों को अधोराणेय बनाकर उन्हें जन साधारण की पहुंच से बहुत दुर कर दिया था। दुरूह भाषा उच्चारण कठिनाईयों एंव यज्ञो एंव कर्मकांडों की जटिलता के कारण वेदों का अध्ययन एवं अध्यापन कठिन कार्य बन गया। प्रखर बुद्धि युवक ही 24–25 वर्ष तक कठिनाई से इसका अध्ययन कर पाते थे। अतः लड़कियों का वेदों का अध्ययन करना कठिन हो गया क्योंकि धर्मगुरूओं के

विद्यान द्वारा लड़कियों के विवाह की आयु निरंतर कम होती जा रही थी। अतः वैदिक साहित्य का उत्तम अंश ही उन्हे पढ़ाया जाता था। जिससे वे दैनिक संध्या वदन का कार्य कर सकें। यही कारण है कि उतर वैदिक काल में विदुषी स्त्रियों की संख्या तो पर्याप्त थी परंतु वैदिक काल की भांति मंत्र दृष्टा एंव मंत्र सृष्टा नारियों को अभाव पाया जाता था।

ईसा पुर्व 400 के लगभग कन्याओं का उपनयन संस्कार केवल औपचारिक रूप से होता था। धीरे–धीरे विवाह की आयु 8 वर्ष होने के साथ कन्याओं के लिए शिक्षा के अवस्र कम होने लगे।

इस युग में यद्यपि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति निरंतर बिगड़ती जा रही थी। तथापि विशेष परिस्थतियों में सहमति पर उसके अधिकारों को मान्यता प्राप्त हुई। पुत्र के अभाव में पिता की संपति पर पुत्री का अधिकार तो वैदिक काल से ही था। विवाह को अनिवार्य मान लिए जाने के कारण पिता एंव भाईयों का यह कर्त्तव्य था कि वह इस कार्य के लिए संपति का एक भाग अलग से रखे। पूर्व नियमों में जो एक मुख्य सुधार हुआ था विधवा का पति की सम्पत्ति अधिकार मान लिया जाना परंतु इस विषय में सभी समृतिकार एक मात्र नहीं थें कौटिल्य ने स्वीकार किया कि विधवा को पति की सम्पत्ति का कुछ भाग जीवन निर्वाह हेतु मिलना चाहिए। परंतु याज्ञवल्कय एवं विष्णु ने पुत्रहीन विधवा को पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी माना अतः मतांतर के कारण भिन्न भिन्न प्रदेशो में अलग–अलग कानूनों को मानयता मिली। कुछ प्रदेशो में विधवा को पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी माना गया है। अतः मतांतर के कारण भिन्न–भिन्न प्रदेशो में अलग–अलग कानूनों को मान्यता मिली। कुछ प्रदेशो ने विधवा के इस अधिकार को मान्यता प्रदान किया परंतु कुछ ने नहीं किया।

वैदिक काल व उसके पश्चात नारी की स्थिति को समझने का प्रयास विभिन्न धार्मिक ग्रंथो सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था हेतू रचे गए उन ग्रंथों के आधार पर किया गया। जिसमें लेखक ने अपने अनुसार नियमों का प्रतिपादन किया है। समृतियों में की गई नारी के प्रति कठो व्यवस्था को समाज में अक्षरशः मान लिया गया हो ऐसा नहीं था।

निष्कर्ष

यह सत्य है कि नारी की गरिमामय छवि का निरंतर ह्रास होता जा रहा था। भारत में स्त्री शिक्षा के प्रति विमुखता बढ़ती रहीं। परन्तु अभिजात्य वर्ग राजपुत स्त्रियां शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ती रही। भारतीय संस्कृति के मूल्य का सदा आदर सदैव होता रहा है। माना आज भी स्त्री पूज्यनीय है और प्रत्येक युग में आवश्यकता एवं स्थिति के अनुसार उसने युग निर्माण में अपना योगदान दिया है। स्त्री की महता को समझने वाले विद्ववान भी प्रत्येक युग में होते रहे है। कालीदास ने कन्या को कुल का प्राण एवं पत्नि का पति की सचिव एंव सखी कहा है। फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि वैदिक युग में जो प्रतिष्ठा एवं गौरव नारियों को मिला आगे चलकर निरंतर उसका ह्रास होता गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 प्रज्ञा शर्मा, महिला विकास एंव सशक्तिकर्ण

2. ऋग्वेद – 3/53/4, टीका

3. सतपथ ब्राह्मण – 5/53/51, टीका

4. अर्थववेद – 6/11, टीका

5. ऋग्वेद – 6/173, टीका

6. सतपथ ब्राह्मण – 14/3/25 टीका

7. नारद धर्मसूत्र – 12/92, टीका

8. ऋग्वेद – 7/4/8, टीका

9. ऋग्वेद – 7/4/8, टीका

10. ऋग्वेद – 7/4/8, टीका

11. आश्वलाय गृहसूत्र – 3/8/11, टीका

12. ऋग्वेद – 6/173, टीका

13. ऋग्वेद – 6/173, टीका

14. मनुस्मृति – 2/67

15. ऋग्वेद – 3/53/31, टीका।